डॉ० सुनीता कुमारी
सहायक प्रोफेसर
हिन्दी विभाग
सोगरा कॉलेज, बिहार शरीफ
नालंदा।

① काल विभाजन एवं नामकरण की समस्या :
(स्नातक प्रतिष्ठा, प्रथम वर्ष)

② कबीर का दर्शन :
स्नातक प्रतिष्ठा, तृतीय वर्ष

③ भक्तिकाल के नीतिकार कवि और उनकी कालजयी नीतियाँ :
स्नातक प्रतिष्ठा, द्वितीय वर्ष

Scanned with CamScanner

स्नातक प्रतिष्ठा प्रथम वर्ष

# काल विभाजन एवं नामकरण की समस्या :

हिन्दी साहित्य के समस्त एक हजार वर्षों से अधिक की विकास यात्रा में प्रारंभ, परिवर्तन एवं नामकरण को लेकर विद्वानों एवं साहित्यकारों में मतैक्य नहीं रहा है। हिन्दी साहित्य लेखन का प्रारंभ कहाँ से मानी जाये तथा परिवर्तन के आलोक में कब और कहाँ से तक एक ऐसी साहित्यिक प्रवृत्तियाँ मिलती हैं? विभिन्न कालखण्डों का नाम क्या हो? ऐसे बहुत सारे प्रश्न हैं, जिनपर निरंतर चिंतन होता रहा है। काल विभाजन और काल-विभागों के नामकरण की समस्या खासकर आदि-काल और रीतिकाल को लेकर लेकर है।

विभिन्न विद्वानों ने काल-विभाजन एवं नामकरण का स्तुत्य प्रयास किया है जिनमें से महत्वपूर्ण रूप से निम्नलिखित हैं —

मिश्रबंधुओं का काल-विभाजन एवं नामकरण :

| | | | |
|---|---|---|---|
| (क) | आरंभिककाल | पूर्वारम्भिककाल | (700 - 1343 वि०) |
| | | उत्तरारम्भिककाल | (1344 - 1444 वि०) |
| (ख) | माध्यमिककाल | पूर्वमाध्यमिककाल | (1445 - 1560 वि०) |
| | | उत्तरमाध्यमिककाल | (1561 - 1680 वि०) |
| (ग) | अलंकृतकाल | ~~पूर्वमाध्यमिककाल~~ पूर्वालंकृतकाल | (1681 - 1790 वि०) |
| | | उत्तरालंकृतकाल | (1791 - 1889 वि०) |
| (घ) | परिवर्तनकाल | | (1890 - 1925 वि०) |
| (ङ) | वर्तमानकाल | | (1926 वि० से अबतक) |

आचार्य शुक्ल का काल-विभाजन एवं नामकरण :

| | | | |
|---|---|---|---|
| (क) | आदिकाल | (वीरगाथाकाल) | (1050 - 1375 वि०) |
| (ख) | मध्यकाल / पूर्व मध्यकाल | (भक्तिकाल) | (1375 - 1700 वि०) |
| (ग) | → उत्तर मध्यकाल | (रीतिकाल) | (1700 - 1900 वि०) |
| (घ) | आधुनिक काल | (गद्यकाल) | (1900 वि० से अबतक) |

Scanned with CamScanner

डा० रामकुमार वर्मा का काल - विभाजन एवं नामकरण :

संधिकाल (750 वि० - 1000 वि०)
चारणकाल (1000 वि० - 1375 वि०)
भक्तिकाल (1375 वि० - 1700 वि०)
रीतिकाल (1700 वि० - 1900 वि०)
आधुनिककाल (1900 वि० - अबतक)

डा० नगेन्द्र के अनुसार :

आदिकाल - सातवीं शती के मध्य से चौदहवीं शती के मध्य तक।
भक्तिकाल - चौदहवीं शती के मध्य से सत्रहवीं शती के मध्य तक।
रीतिकाल - सत्रहवीं शती के मध्य से उन्नीसवीं शती के मध्य तक।
आधुनिक काल - उन्नीसवीं शती के मध्य से अबतक।

1. पुनर्जागरण काल (भारतेन्दु - काल) सन् 1857 - 1900 ई०
2. जागरण - सुधारकाल (द्विवेदी - काल) सन् 1900 - 1918 ई०
3. छायावाद काल सन् 1918 - 1938 ई०
4. छायावादोत्तर काल
   (क) प्रगति - प्रयोगकाल सन् 1938 - 1953 ई०
   (ख) नवलेखन - काल सन् 1953 ई० से अबतक।

साहित्येतिहास लेखकों के कालविभाजन के सम्यक् मूल्यांकन एवं हिन्दी साहित्य की समस्त परंपरा को देखते हुए समस्त हिन्दी साहित्य की परंपरा को विभिन्न कालखंडों में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है :—

आदिकाल 700 से 1400 ई०
मध्यकाल (1400 से 1850 ई०)
भक्तिकाल 1400 ई० - 1650 ई०
रीतिकाल 1650 ई० - 1850 ई०

Scanned with CamScanner

आधुनिक काल 1850 ई० — आजतक

पुनर्जागरण काल 1850 ई० - 1900 ई०

जागरण-सुधारकाल 1900 ई० - 1918 ई०

छायावाद काल 1918 ई० - 1936 ई०

छायावादोत्तर-काल 1936 ई० से —

प्रगतिवाद 1936 ई० - 1942 ई०

प्रयोगवाद 1943 ई० - 1953 ई०

नई काव्यधारा 1954 ई० - 1960 ई०

नवलेखन काल 1961 ई० से अबतक ।

नामकरण की समस्या

साहित्येतिहास लेखकों ने विभिन्न-कालखण्डों के नाम-करण इस प्रकार किये हैं —

आदिकाल

| | |
|---|---|
| आचार्य रामचंद्र शुक्ल | वीरगाथाकाल (आदिकाल) |
| आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी | आदिकाल |
| डा० रामकुमार वर्मा | चारणकाल |
| महावीर प्रसाद द्विवेदी | बीज-वपनकाल |
| राहुल सांकृत्यायन | सिद्ध-सामंतकाल |
| मिश्रबंधु | आरम्भिक-काल |
| गणपतिचन्द्र गुप्त | प्रारंभिक-काल |

मध्यकाल

| | |
|---|---|
| आचार्य रामचन्द्रशुक्ल | पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल) |
| डा० रामकुमार वर्मा, हजारी प्रसाद द्विवेदी, आचार्य रामचंद्र शुक्ल | उत्तरमध्यकाल (रीतिकाल) |
| डा० रामकुमार वर्मा | कलाकाल, शृंगारकाल, |
| हजारी प्रसाद द्विवेदी | अलंकृत काल |

Scanned with CamScanner

आधुनिक काल

आचार्य रामचंद्र शुक्ल
डॉ० रामकुमार वर्मा
हजारीप्रसाद द्विवेदी आदि। } आधुनिकाल / गद्यकाल / वर्तमानकाल

उपर्युक्त सभी नामकरण रचनात्मक प्रवृत्तियों को ध्यान में रखकर किया गया है।

सबसे ज्यादा विवाद आदिकाल एवं रीतिकाल के नामकरण को लेकर है। भक्तिकाल एवं आधुनिक काल के नामकरण पर मतभेद नहीं दिखता। यदि समस्त कालखण्डों को आदिकाल, मध्यकाल तथा आधुनिक काल के रूप में स्वीकार करें तो आदिकाल में वीरगाथात्मक रचनाओं के साथ-साथ सिद्ध, जैन एवं नाथ पंथियों एवं देश-भाषा के काव्य को भी जगह मिल जाएगी। ठीक उसी प्रकार यदि हम रीतिकाल नाम को स्वीकारते हैं तो उसमें शृंगार, कला तथा अलंकारजन्य समस्त साहित्यिक कृतियाँ सम्मिलित हो जाएँगी तथा आधुनिक काल को स्वीकारते हैं तो उसमें गद्य के साथ-साथ साहित्य के विविध रूप-स्वरूप का समावेश स्वतः हो जाएँगे।

Scanned with CamScanner

# भक्तिकाल के नीतिकार कवि और उनकी कालजयी नीतियाँ

कालजयी कृति वह है, जिसके पठनोपरांत हमारे मन, कर्म और वचन में सामंजस्य स्थापित हो। जगत् के हर नर–नारी के प्रति–"**सीता राम मय सब जग जानी। / करहुँ प्रनाम जोरि जुग पानी।।**" की भावना हृदय में संचरित हो। कालजयी कृति वह है, जिसको पढ़ने के बाद हमारे मन–मष्तिस्क में–"**सुमन है सुन्दर, विहग है सुन्दर / मानव तुम सबसे सुन्दरतम् हो।**" की भावना जागृत हो। कालजयी कृति वह है, जिसको पढ़ने के बाद हमारा स्वभाव कहे– "**हम सब सुमन एक उपवन के**" जैसी उदात्त भावनाओं का पल्लवन कर सके, वही रचना (कृति) की कालजयिता है।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में भक्तिकाल का अन्यतम स्थान है। आदिकाल के बाद आये इस काल को 'पूर्वमध्यकाल' भी कहा जाता है। जिसकी समय–सीमा आचार्य रामचंद्र षुक्ल ने विक्रम संवत् 1375 से 1700 तक मानी है। हिन्दी–साहित्य के इस उत्कर्ष काल को विद्वानों ने अलग–अलग नामों से संबोधित किया है। यथा– जॉर्ज ग्रियर्सन ने 'स्वर्णयुग' तो डॉ0 रामविलास ने 'लोक–जागरण काल' आदि।

मनुष्य एक सामाजिक और विवेकषील प्राणी है, जो हमेषा अपने नैतिक उत्थान के लिए तत्पर रहता है। नैतिकता की यह प्रक्रिया व्यष्टि के लिए न होकर समष्टि के लिए होने लगती है, तब वह, नीति कहलाती है। साहित्य में इस प्रकार की भावना से प्रेरित होकर जो काव्य लिखा जाता है, उसे नीति–काव्य कहते हैं।

कबीर यों तो निर्गुणधारा के कवि हैं, पर नीति–काव्य को भी उनकी देन कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। उनकी अधिकांष साखियाँ नीति और उपदेष की हैं। कबीर की साखियों का सबसे बड़ा संग्रह गुजरात से प्रकाषित हुआ है, जिसमें लगभग 1800 साखियाँ हैं, पर उनमें कितनी साखियाँ कबीर की हैं और कितनी प्रक्षिप्त हैं, यह कहना कठिन है। अब–तक के प्रकाषित 'कबीर ग्रंथावली' में सबसे प्रामाणिक डॉ0 ष्यामसुन्दर दास द्वारा सम्पादित को माना जाता है। कबीर की अधिकांष साखियों का विषय नीति है– जिसमें गुरु, संषय, प्रेम, क्रोध, गर्व, मन, नारी, धन, हँसी, निन्दा, संगति, दुःख, साधु, कपट तथा आषा आदि है। इनकी साखियों की षैली उपदेषात्मक है और प्राधनता नीति और आचार की है।



Scanned with CamScanner

कबीर मनुष्य देह को कागज का नाव कहा है और पंच विकार (काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह) को पानी कहा है, जिसके स्पर्ष मात्र से कागज रूपी देह नष्ट हो जाता है। यथा–**"कागद केरी नाँव री, पांणी केरी गंग। / कहै कबीर कैसे तिरूँ, पंच कुसंगी संग।।"**

कबीर ने जन–सामान्य को समझाते हुए कहा कि मन के हारने से ही हार होती है और मन के जीतने से जीत अर्थात् मन के गहन विष्वास से ही भगवान की प्राप्ति होती है–**"मन के हारे हार है, मन के जीते जीति।/कहै कबीर हरि परइए, म नही की परतीति।।"**

जो प्राणी जैसा कथन करता है, और उसका वह पालन नहीं करता, तो वह मनुष्य नहीं। उनकी दषा कुत्तों जैसी है। ऐसे लोगों को काल (यमराज) बाँधकर जमपुर ले जाते हैं। यथा–**"जैसी मुख तैं नीकसै, तैसी चालै नाहिं।/मानिष नहीं ते स्वान गति, बांध्या जमपुर जाहिं।।"**

कबीरदास कहते हैं कि साधु कि संगति कभी व्यर्थ नहीं जाती। जैसे चंदन के वृक्ष को छोटा होते हुए भी कोई नीम नहीं कहता। इसी प्रकार साधु की स्थिति होती है। बाह्य रूप से वह चाहे जैसा भी दिखे लेकिन उसके आंतरिक गुणों के कारण उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। अर्थात् हमेषा व्यक्ति के गुणों की पूजा होती है, रूपों की नहीं। यथा–**"कबीर संगति साध की कदे न निरफल होइ।/चंदन होसी बाँवना, नींब न कहसी कोई।।"**

कबीर सत्य के हिमायती थे, वे कहते थे कि सच्चाई के बराबर कोई तपस्या नहीं, झूठ (मिथ्या आचरण) के बराबर कोई पाप कर्म नहीं। जिसके हृदय में सच्चाई, उसी के हृदय में राम निवास करते हैं–**"साँच बरोबरि तप नहीं, झूठ बरोबरि पाप।/जके हिरदै साँच है, ताकै हृदय आप।।"**

कबीरदास कहते हैं कि वाणी की ऐसी विषेषता होती है कि व्यक्ति के बोलते ही पहचान में आ जाती है। अर्थात् षरीर के अन्तर की करनी मुख के रास्ते (वाणी से) बाहर आ जाती हैं। जिसका जैसा आचरण होता है, उसकी अभिव्यक्ति वाणी द्वारा अवष्य हो जाती है। यथा–**"बोलत ही पहचानिए साधु, चोर का घट।/अंतर घट की करनीं, निकसै मुख की बाट।।"**

आगे वे कहते हैं कि वाणी ऐसी बोलनी चाहिए कि जिसमें मन का अहंकार न हो, श्रोता सुनते ही षांत अर्थात् सुख की अनुभूति करने लगे। यथा–**"ऐसी वाणी बोलिए, मन का आपा खोय।/अपना तन सीतल करै, औरन कौ सुख होय।।"**

मनुष्य के दोहरे चरित्र को उद्घाटित करते हुए कहते हैं–**"कबीर तहाँ न जाइए, जहाँ कपट का हेत।/ज लूँ कली कनीर की, तन रातौ मन सेत।।"**



Scanned with CamScanner

गुरु की महत्ता को रेखांकित करते हुए कबीर बताते हैं कि गुरु द्वारा बताया गये मार्ग पर चलना एवं उनके द्वारा दिए गये तत्त्वज्ञान को आत्मसात् करके ही मनुष्य परमात्मा को प्राप्त कर सकता है। यथा–**"जो पहर्‌या सो फाटिसी, नाँव धर्‌या सो जाइ।/कबीर सोइ तत्त गहि, जौ गुरि दिया बताइ।।"**

इस प्रकार कबीर की साखियों में नीति की बातें सर्वत्र दिखाई देती हैं। जो सामान्य एवं विषिष्ट जन के लिए अनुकरणीय है।

राम भक्त षिरोमणि कवि–कुल षेखर गोस्वामी तुलसीदास भक्तिकाल के अप्रतिम नीति कवि हैं। उनकी नीतिपरक सूक्तियाँ भारत की जनता की ज़बान पर हैं और जीवन के हर क्षेत्र में वे पथ–प्रदर्षन करती हैं। जीवन की जितनी अधिक परिस्थितियों का स्पर्ष तुलसी के नीति–काव्य ने किया है, उतना और किसी भी नीति कवि के काव्य ने नहीं किया। नीति की दृष्टि से तुलसी के प्रधान ग्रंथ 'रामचरितमानस' तथा 'दोहावली' हैं।

तुलसीदासकृत 'रामचरितमानस' के हरेक चौपाई–दोहों में उनके चिन्तन, विचार एवं अनुभवों से युक्त नीति के अमृत भरे पडे है, वष उसे स्पर्ष कर अनुपालन की आवष्यकता है। रामचरितमानस के नीति वचन को हम कई भगों में बाँट सकते हैं–

(1) भाव–संबंधी नीतियाँ (2) आध्यात्म संबंधी नीतियाँ (3) राजनीति संबंधी नीतियाँ (4) देव संबंधी नीतियाँ (5) पत्र संबंधी नीतियाँ (6) समाज संबंधी नीतियाँ (7) प्रकृति संबंधी नीतियाँ (8) पषु संबंधी नीतियाँ (9) नदी संबंधी नीतियाँ (10) स्थान संबंधी नीतियाँ (11) युग संबंधी नीतियाँ (12) पदार्थ संबंधी नीतियाँ

तुलसीदास जी कहते हैं संसार में ऐसा कौन व्यक्ति हैं जिसे काम ने न नचाया है–**"को जग काम नचाव न जेही"** आगे वे कहते हैं कि चिन्ता रूपी साँपिन किसको नहीं डँसता है--**"चिन्ता साँपिनि को नहिं डँसा"** दरिद्रता की मार्मिक अभिव्यक्ति देते हुए उन्होंने कहा कि संसार में दरिद्रता अर्थात् गरीबी से बढ़कर कोई दूसरा दुःख नहीं है, उत्तरकाण्ड की ये पंक्तियाँ देखिए–**"नहिं दरिद्र सम दुख जग माहीं।"**

सुन्दरकाण्ड में कवि तुलसी कहते हैं कि मन्त्री, वैद्य और गुरु ये तीन यदि अप्रसन्नता के भय या लाभ की आषा से ठकुर सोहाती करते हैं तो क्रमषः राज्य, षरीर और धर्म इन तीनों का षीघ्र ही पतन हो जाता है–**"सचिव बैद गुर तीनि जौं प्रिय बोलहिं भय आस।/राज धर्म तन तीनि कर होइ बेगहीं नास।।"**

इतना ही नहीं समाज व राष्ट्र के हित के लिए मुखिया को मुख के समान होना चाहिए, जो खाने–पीने को तो अकेला है, परंतु सभी अंगों का पालन–पोषण विवके के साथ करता है। अयोध्याकांड का यह दोहा देखिए–**"मुखिया मुखु सो चाहिए, खान पान कहुँ एक। /पालइ–पोसइ सकल अंग तुलसी सहित बिबेक।।"** षास्त्र की महत्ता को रेखांकित



Scanned with CamScanner

करते हुए तुलसी ने इसे बार–बार चिंतन करने की सलाह दी है–**"शास्त्र सुचिंतित पुनि पुनि पेखिए"**

इस प्रकार रामचरितमानस में अनगिनत नीति के पद भरे पड़े हैं, जो साहित्याकाष में दैदीप्यमान नक्षत्र की भाँति टिमटिमा रहे हैं।

रामचरितमानस के बाद सर्वाधिक नीतिपरक बातें 'दोहावली' में वर्णित हैं। जो आज भी लोक जन–जीवन में व्याप्त हैं। तुलसीदास जी कहते हैं कि धीरज, धर्म, विवके, सत्साहित्य, साहस, सत्यव्रत और राम पर विष्वास बुरे समय के मित्र हैं–**"तुलसी असमय के सखा, धीरज धरम बिबेक।/साहित्य साहस सत्यब्रत, राम भरोसे एक।।"** आगे वे कहते हैं कि अमृत, साधु, कल्पवृक्ष, पुष्प, सुन्दर फल, सुहावनी बात और श्री राम की भक्ति–ये सात सुन्दर मंगलकारी षकुन हैं–**"सुधा साधु सुरतरु सुमन सुफल सुहावनि बात।/तुलसी सीतापति भगति सगुन सुमंगल सात।।"**

तुलसी के बाद रहीम के दोहे भारतीय जनता को सर्वाधिक प्रभावित किया है। वे अपने दोहों में जितने भावों को व्यंजित किया है, उनकी गणना तो कठिन है, किन्तु जिस भाव को भी उन्होंने व्यक्त किया है, वह अपनी सम्पूर्णता में ही अभिव्यक्त हुआ है। जैसे–**"थोरो किए बड़ेन की, बड़ी बड़ाई होय।/ज्यों रहीम हनुमंत को, गिरधर कहत न कोय।।"**

बड़े व्यक्ति यदि अपनी क्षमता से थोड़ा–सा भी कार्य कर देते हैं तो उनकी अत्यधिक प्रषंसा होती है। जैसे श्रीकृष्ण ने कुछ देर के लिए गोवर्द्धन पर्वत को उठा लिया तो उनकी काफी प्रसिद्धि हुई, और उन्हें 'गिरिधर' कहा जाने लगा। इसके विपरीत, अपनी क्षमता से भी अधिक सामर्थ्य लगाकर हनुमानजी संजीवनी वाले पर्वत को कई योजनों तक उठा ले गये। फिर भी श्रीकृष्ण को ही 'गिरिधर' कहा जाता है, हनुमान को नहीं। रामायण तथा श्रीमद्भागवत पुराण की घटनाओं के उल्लेख से कवि का वक्तव्य अत्यधिक भाव–प्रवण बन गया है। यह कवि की बहुज्ञता तथा काव्य–प्रतिभा का ही परिणाम है।

प्रेम–भाव में अति निकटता प्रेम की गरिमा के लिए घातक है, अतः प्रेम–सम्बन्ध में दूरी बनाये रखना आवष्यक है। अन्यथा उसका वैसे ही निरादर होता है, जैसे गड्ढे के पानी का–**"नात नेह दूरी भली, तो रहीम जिय जानि।/निकट निरावर होत है, ज्यों गड़ही को पानि।।"** यों तो सभी प्रेमी होने का दावा कर सकते हैं, किन्तु प्रेम की कसौटी तीन हैं–पराधीनता, पड़ोस तथा मुकदमा। इन तीनों के द्वारा ही षत्रु–मित्र की पहिचान होती है–**"रहिमन तीन प्रकार तें, हित अनहित पहचानि।/परबस परे, परोस बस, परे मामला जानि।।"**

रहीम ने लौकिक प्रेम के विषय में ही षिक्षा नहीं दी, अलौकिक प्रेम अर्थात् भक्ति के विषय में भी सामान्य उदाहरणों के द्वारा अत्यन्त मार्मिक चित्र प्रस्तुत किये हैं। अनन्य भाव की भक्ति की विषेषता का वर्णन देखिए –**"प्रीतम छबि नैनन बसी, पर छबि कहां**



Scanned with CamScanner

**समाय।/भरी सराय रहीम लखि, आप पथिक फिरि जाय।।"** संसार में लक्ष्मी की अत्यधिक कामना तथा पूजा की जाती है, पर लक्ष्मी तो चंचल है, एक स्थान पर स्थिर नहीं रहती। कवि की अभिव्यक्ति देखिए –**"कमला थिर न रहीम कहि, यह जानत सब कोय।/पुरुष पुरातन की बधू, क्यों न चंचला होय।।"**

साथ ही यह भी स्वीकार किया है कि संसार में सम्मानित जीवन के लिए सम्पत्ति परम आवष्यक है, क्योंकि जिस प्रकार पानी से ही कमल की सुरक्षा बनी रहती है, उसी प्रकार सम्पत्ति पाकर ही व्यक्ति समाज में सुरक्षित रह सकता है–**"रहिमन निज सम्पत्ति बिना, कोउन बिपत्ति सहाय।/बिनु पानी ज्यों जलज को, नहिं रवि सकै बचाय।।"** याचना को समाज में अत्यंत घृणित कार्य माना गया है। मरना तथा मांगना दोनों ही समान हैं। मांगने से साधारण मनुष्य की तो बात ही क्या है, स्वयं त्रिलोकीनाथ भगवान विष्णु की भी महिमा कलंकित हो गई है–**"रहिमन जाचकता गहे, बड़े छोट ह्वै जात।/नारायन हू को भयो, बावन आंगुर गात।।"**

जिस प्रकार धनाढ्यता वरदान है, उसी प्रकार निर्धनता परम कष्टकारक अभिषाप है। इसीलिए नीतिकारों ने कहा है कि निर्धन व्यक्ति को अपने बंधु–बांधवों के मध्य नहीं रहना चाहिए, भले ही उन्हें जंगल में रहना पड़े–**"बस रहीम कानन भलो, बास करिय फल भोग।/बन्धु–मध्य धनहीन ह्वै, बसिबो उचित न योग।।"** मित्रता तथा षत्रुता दोनों भाव ही समाज में देखें जाते हैं। कौन मित्र है, और कौन षत्रु, इसकी पहिचान तभी होती है, जब मनुष्य पर बिपत्तियां आकर पड़ती हैं। इसीलिए रहीम ने विपत्ति को वरेण्य माना है–**"रहिमन बिपदाहू भली, जो थोरे दिन होय।/हित अनहित या जगत में, जान परैं सब कोय।।"** आदर्ष प्रेम के लिए रहीम ने भी दूध और पानी का परम्परागत उदाहरण दिया है –**"जलहिं मिलाय रहीम ज्यों, कियो आप सम छीर।/अँगनहि आपुहि आप त्यों, सकल आंच की पीर।।"**

जिस प्रकार जल अपने मित्र दूध को बचाने के लिए आग की ताप को स्वयं ही झेलता हुआ नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार सच्चा मित्र अपने मित्र के लिए अपना सर्वस्व स्वाहा कर देता है। व्यक्ति को अपने व्यवहार में अत्यंत सतर्क एवं सावधान रहना चाहिए, क्योंकि यदि एक बार भूल हो गई तो फिर वह किसी भी प्रकार नहीं सुधर सकती। विष्णु भगवान ने जब एक बार वावन–रूप धारण कर लिया तो वे आज तक इस रूप से मुक्त नहीं हो सके हैं, यद्यपि बाद में उन्होंने सारी वसुधा को तीन पैग में नापने के लिए आकाष तक बढ़कर विषाल रूप धारण कर लिया था–**"रहिमन बिगरी आदि की, बनै न खरचे दाम।/हरि बाढ़े आकाश लौं, तऊ बावनो नाम।।"**

भारतीय संस्कृति में भाग्य तथा पुरुषार्थ दोनों का ही विविध रूपों में चित्रण हुआ है। इसीलिए यदि कभी किसी ने भाग्य की अनिवार्यता प्रतिपादित की है, तो किसी ने पुरुषार्थ की षक्ति का वर्णन किया है। रहीम ने भी कहा है कि मनुष्य–जीवन में भाग्य का बहुत महत्त्व है। जिस प्रकार कठपुतली वाला अपने हाथों के संचलनों से कठपुतलियों को अपनी



Scanned with CamScanner

इच्छानुसार नचाता रहता है, उसी प्रकार भाग्य भी मनुष्य को नचाता रहता है। यदि भाग्य में इतना सामर्थ्य न होता तो न तो राम कंचन मृग के पीछे जाते, और न सीता का रावण हरण करता–**''राम न जाते हिरन संग, सीय न रावन साथ।/जो रहीम भावी कतहुं, होति आपने हाथ।।''**

नीति तथा सामाजिक वक्तव्यों के अतिरिक्त रहीम ने इसी कुषलता से दार्षनिक तथा भक्ति विषयक विचारों को भी अभिव्यक्त किया है। जीवन की क्षणभंगुरता का यह वर्णन कितना सत्य एवं मार्मिक है–**''कागद को सो पूतरा, सहजहिं में घुल जाय।/रहिमन यह अचरज लख्यो, सोऊ खेंचत वाय।।''**

इसी प्रकार उस प्रभु की भक्तवत्सलता तथा करुणा भी विचित्र है, जो सभी का बिना किसी भेद–भाव के पालन करते हैं–**''अमर बेंलि विन मूल की, प्रतिपालत है ताहि।/रहिमन ऐसे प्रभुहिं तजि, खोजत फिरिए काहि।।''** जिस व्यक्ति ने राम–नाम का महत्त्व नहीं जाना, बल्कि सदैव पाप–कर्मों में ही लिप्त रहा, उसने निष्चय ही अपना जन्म व्यर्थ ही गंवा दिया–**''राम नाम जान्यो नहीं, जान्यो सदा उपाधि।/कहि रहीम तिहि आपुनो, जनम गंवायो बादि।।''** अतः कहा जा सकता है कि रहीम ने अपने दोहों में सभी प्रकार के भावों को संजोकर उन्हें अपनी काव्य–प्रतिभा से अत्यंत भावप्रवण बना दिया है। सम्भवतः कोई भी ऐसा भाव–क्षेत्र षेष नहीं रहा है, जहाँ रहीम के दोहे न पहुँचे हों।

भक्तिकाल के प्रसिद्ध नीतिकार कवि कबीर, तुलसी और रहीम के अलावे अन्य नीतिकार कवियों की नीतियाँ भी कम प्रसिद्ध नहीं है। यथा–

**पद्मनाभ**–ये भक्तिकाल के पहले नीति कवि हैं, जिन्होंने अपने आश्रयदाता सेठ डूँगर के नाम पर अपना नीति सम्बन्धी काव्य 'डूँगर बावनी' सं0 1543 वि0 में रचा था, जिसमें 52 छप्पयों के अन्तर्गत दया, क्रोध, अभिमान, विनम्रता, कर्म–फल, जीवन की सार्थकता, जुआ, आखेट, सुरा–पान, वेष्यागमन आदि विभिन्न विषयों का निरूपण किया गया है। कवि ने अपनी कल्पना–षक्ति का उपयोग करते हुए विषयों को प्रभावोत्पादक रूप में प्रस्तुत किया है; यथा–**''जस कारणि बलिराज दिन्न बावन महाधर।/जस कारणि कवियणह कर्णि अप्पउ कणयभर।।/जस कारणि करि समर कप्पि अप्पीयउ कलेवर।/जस कारणि जगदेव कलहि कंकाल दियउ सिर।।/जस कज्जि अज्जि भूपत भमण भिड़ई मुँड रिण रंग रसु।/सो दुक्खि सुक्खि डूंगर कहइ तिम किज्जइ जिम होइ जसु।।''** इनकी भाषा को डॉ0 षास्त्री ने अपभ्रंष–प्रभावित राजस्थानी माना है। कवित्त–छप्पय प्रारम्भ में वीर रस के लिए ही प्रयुक्त होते थे; अतः उनकी ओजस्विता का प्रभाव यहाँ भी परिलक्षित होती है।

**ठाकुरसिंह (ठक्कुरसी)** के दो नीति–काव्य–'कृपण चरित्र' एवं 'पंचेन्द्री वेलि'–अभी तक अप्रकाषित हैं। 'कृपण चरित्र' की रचना 1580 वि0 में हुई थी तथा इसमें एक कृपण सेठ



Scanned with CamScanner

की कथा 35 छप्पयों में प्रस्तुत की गई है। इस दृष्टि से यह मुक्तक काव्य न होकर लघु प्रबंध काव्य है। दूसरे ग्रंथ का रचना–काल 1585 वि0 है, जिसमें पंचेन्द्रियों से उत्पन्न विकारों का दिग्दर्षन दोहा एवं साखी छनद में करवाया गया है। इसकी षैली पर्याप्त सरस एवं काव्यात्मक है। एक नमूना द्रष्टव्य है–**''वन तरुवर फल खातु फिरि, पय पीवतौ सु खंद।/फरसण इन्द्री प्रेरियौ, बहु दुख सहै गयंद।।/बहु दुख सहौ गयंदो, तसु होइ गई मति मंदो।/कागत के कुंजर काजै, पड़ि खाड़ै सक्यो न भाजै।।''**

**छीहल** ने 'बावनी' नामक ग्रंथ की रचना सं0 1584 वि0 में की थी, जो अभी तक अप्रकाषित है। इसमें संसार की स्वार्थपरायणता, दान के औचित्य, नृप स्त्री, सर्प, सुनार तथा वीरांगनाओं की अविष्वसनीयता, कृपण–निन्दा आदि का निरूपण छप्पयों में किया गया है। विषय–वस्तु को प्रभावोत्पादक षैली में प्रस्तुत करने में इन्हें पर्याप्त सफलता मिली है; यथा एक छप्पय द्रष्टव्य है–**''दरबु गाडि मम धरहु धरी, किधु काजि न आवइ।/बिलसउ जस कंइ काजि न तरि तीछै पछितावइ।।/नर नरिंद नर भुवणि संचि संपइ ते मूवा।/ते वस्तु धामहिं बहुरि जनम सूकर के हूवा।।/धन काज अधोमुख दसन सिंउ धरणि विदारहि रंयण दिण।/'छोहल' कहै सोधत फिरइ किही न पावै पुनि विण।।''**

**देवीदास**–ये मारवाड़ निवासी और तुलसीदास के समकालीन एवं षेखावाटी–नरेष राव लूणकरण के मन्त्री थे, जिन्होंने 'राजनीति के कवित्त' में राजनीति एवं लोक–व्यवहार का प्रतिपादन अत्यन्त प्रवाहपूर्ण ष्षैली में किया था। उदाहरणार्थ एक छंद प्रस्तुत है–**''जिनके उदार चित्त गाँव बीच मित्त पूरे,/गुनवन्त सब ही के 'देवी' सुखदात हैं।/रूप के उजारे नैन तारन मैं राखि लीजै,/बेलन मैं मोल लेत ऐसे मुख बात हैं।/साथ लागै सुख फिरै निराधार दुख फिरैं,/भाग खुलैं जहाँ को तहाँ ई चलि जात हैं।/कापुरुष गुन हीन दीन मन नीच नर,/बाप की तलाई बीच बैठैं कीच खात हैं।''** इनके अनेक छन्दों पर भर्तृहरि के 'नीति–षतक' तथा अन्य संस्कृत ग्रंथों का भी पर्याप्त प्रभाव दृष्टिगोचर होता है; अतः कहा जा सकता है कि इन्होंने संस्कृत ग्रथों का पर्याप्त अनुषीलन किया था। षैली के क्षेत्र में इन्होंने उपदेषात्मक षैली, संवादात्मक षैली आदि का प्रयोग किये हैं, जो प्रषंसनीय हैं। डॉ0 रामस्वरूप षास्त्री ने इन्हें विषय की उपयोगिता, भावों की तीव्रता, अनुभव की व्यापकता, भाषा की स्वच्छता आदि की दृष्टि से नीति–काव्य रचयिताओं की अग्र–पंक्ति में स्थान देने योग्य प्रमाणित किया है, जो उचित प्रतीत होता है।

**महाराज टोडरमल**–ये कुछ दिन षेरषाह के यहाँ ऊँचे पद पर थे, पीछे अकबर के समय में भूमिकर विभाग के मंत्री हुए। इनका जन्म संवत् 1550 में और मृत्यु संवत् 1646 में हुई। ये कुछ दिनों तक बंगाल के सूबेदार भी थे। ये जाति के खत्री थे। इन्होंने ष्षाही दफ्तरों में हिन्दी के स्थान पर फारसी का प्रचार किया जिससे हिन्दुओं का झुकाव फारसी



Scanned with CamScanner

की षिक्षा की ओर हुआ। ये प्रायः नीति सबधी पद्य कहते थे। एक नमूना देखिए–''**जार को विचार कहा, गनिका को लाज कहा,/गदहा को पान कहा, आँधरे को आरसी।/निगुनी को गुन कहा, दान कहा दारिद को,/सेवा कहा सूम की अरंडन की डार सी।/मादपी को सुचि कहाँ, साँच कहाँ लंपट को,/नीच को बचन कहा स्यार की पुकार सी।/टोडर सुकवि ऐसे हठी तौ न टारे टरै,/भावै कहौ सूधी बात भावै कहौ पारसी।।**''

**मनोहर कवि**–ये एक कछवाहे (कुषवाहा) सरदार थे जो अकबर के दरबार में रहा करते थे। षिवसिंह सरोज में लिखा है कि ये फारसी और संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे और फारसी कविता में अपना उपनाम 'तौसनी' रखते थे। इन्होंने 'षत–प्रष्नोत्तरी' नाम की पुस्तक बनायी है तथा नीति और श्रृंगाररस के बहुत से फुटकल दोहे कहे हैं। इनका कविता काल संवत् 1620 के आगे माना जाता है। इनके नीति परक दोहे के नमूने देखिए–''**अचरज मोहिं हिन्दू–तुरुक बादि करत संग्राम।/इक दीपति सों दीपियत काबा काशीधाम।।**''

**जमाल**– ये एक सहृदय मुसमान कवि थे, जिन्हें भारतीय काव्य परम्परा का पूर्ण ज्ञान था। इनका रचनाकाल संवत् 1627 अनुमान किया गया है। इनका कोई स्वतंत्र ग्रंथ नहीं मिलता। परंतु कुछ दोहे मिलते हैं जिनका संग्रह 'जमाल दोहावली' नाम से किया गया है। इसमें भावों की मार्मिक अभिव्यंजना है जिसके कारण उनके नीतिपरक और श्रृंगारपरक दोहे राजपूताने में बहुत ही लोकप्रिय हुए। इनके नीतिपरक दोहे के कुछ नमूने देखिए–''**रंग ज चोल मजीठ का, संत वचन प्रतिपाल।/पहण–रेख रु करम गत, ए किमि मिटै, जमाल।।/कामिण जावक–रंग रच्यो, दमकत मुकता–कोर।/इम हंसा मोती तजे, इम चुग लिए चकोर।।**''

**रत्नावली**–ये गोस्वामी तुलसीदास की पत्नी थीं। कहते हैं कि गोस्वामी तुलसीदास को वैराग्य की ओर इन्होंने ही उन्मुख किया था। इनकी पुस्तक है 'रत्नावली–दोहा–संग्रह' जिसमें 111 दोहे हैं। जिनमें नीति संबंधी उपदेष हैं। देखिए–**घी को घट है कामिनी, पुरुष तपत अंगार।/रत्नावली घी अगिन को, उचित न संग विचार।।**''

**उदैराज**– ये बीकानेर–नरेष महाराज राजसिंह के राजकवि थे। इनकी पुस्तक 'उदैराज को दूहा' सन् 1603 ई0 में लिखी। इसके अलावा 'गुणबावनी' भी इनकी रचना है। ये दोनों रचनाएँ बीकानेर के अभय जैन ग्रंथालय में सुरक्षित हैं। इसकी भाषा राजस्थानी है। इनमें नीति विषयक कथन मिलते है।

**कवि बान**– ये मथुरा निवासी रमई काठक के पुत्र थे और महाराज महासिंह के यहाँ प्रतिष्ठित थे। इनकी पुस्तक 'कलिचरित्र' है। इसमें 45 पद्य हैं। इन्होंने अपने ग्रंथ में जहाँगीर की प्रषंसा भी की है तथा कलिकाल की विडम्बनाओं का वर्णन इसमें किया गया है। भाषा ब्रज है तथा व्यंग्यात्मक षैली का प्रयोग किया गया है।



Scanned with CamScanner

**कवि वाजिद**– ये दादू दयाल के षिष्य थे। हिरणी के षिकार से दुःखी होकर इन्होंने संन्यास ग्रहण किया। इनके ग्रंथ सम्पूर्ण रूप में नहीं मिलते हैं, परन्तु इनके द्वारा प्रणीत चौदह ग्रंथों का उल्लेख मिलता है, जिनमें 'गुण उत्पत्तिनामा', 'ग्रंथ प्रेमनामा', 'ग्रंथ गरजनामा', 'साखी वाजिद' आदि प्रमुख हैं। इनमें दान, दया, साधुसंगति, इन्द्रिय निग्रह आदि पर विषेष बल दिया गया है। इन्होंने दोहा, चौपाई और अरिल्ल छंदों का प्रयोग किया है।

**बनारसीदास**– ये जौनपुर निवासी, जैन तथा व्यवसाय से जौहरी थे, इनके पिता का नाम खड्गसेन था। इनका जन्म सन् 1586 ई0 में हुआ था। ये आमेर में भी रहा करते थे। इन्होंने सम्राट अकबर की प्रषंसा की है, जहाँगीर व ष्षाहजहाँ के दरबार में इनका बड़ा सम्मान था। इनकी मृत्यु सन् 1643 के लगभग हुई। इनकी रचनाएँ हैं– 'नवरस पद्मावलि', 'समयसार नाटक', 'बनारसी–विलास', 'अर्द्ध कथानक', 'भाषा सूक्तिमुक्तावली'। इनमें अर्द्धकथानक (1641 ई0) को हिन्दी के प्रथम आत्मकथात्मक ग्रंथ होने का गौरव प्राप्त है। इस ग्रंथ से पता चलता है कि युवावस्था में इनका आचरण ठीक नहीं था। इन्हें कुछ रोग भी हो गया था। पहले ये श्रृंगार रस की कविताएँ करते थे, परंतु बाद में ज्ञान होने पर इन्होंने अपने उन सभी रचनाओं को गोमती में बहा दिया था और ज्ञानोपदेष पूर्ण कविताएँ करने लगे थे। इनकी अन्य रचनाओं में 'नाममाला' (कोष), 'बनारसी पद्धति', 'मोक्षपदी', 'धुववंदना', कल्याण मंदिर भाषा', 'वेदनिर्णय पंचाषिका' आदि भी उल्लेखनीय हैं।

इन्होंने कंचन और कामिनी के त्याग तथा सत्य, क्षमा, ष्षील, अपरिग्रह, नम्रता, निर्लोभ, अहिंसा आदि गुणों के निर्वाह पर बल दिया है। नीति के अलावा अध्यात्म की भी इन्होंने चर्चा की है। ये समस्त प्राणियों में एक ही परमेष्वर का अंष मानते थे। मानवीय एकता के पक्षधर थे। इन्हें हिंदू–मुसमान, ब्राह्मण–षूद्र आदि में भेद स्वीकार नहीं था।

इनकी रचना षैली प्रवाहमयी और सषक्त थी। कुछ उपदेष ब्रजभाषा गद्य में भी है। इनकी कविता में दादूपंथी सुन्दरदास से साम्यता झलकती हैं। देखिए–**"मोदू! छे हिरदय की आँखै।/जे सरबै अपनी सुख संपति भ्रम की संपति भाखै।।/जिन आँखिन सों निरखि भेद गुन ज्ञानी ज्ञान विचारैं।/जिन आँखिन सों लखि सरूप मुनि ध्यान धारना धारैं।।"**

**कवि राजसमुद्र**– इनका जन्म सन् 1590 ई0 में बीकानेर में हुआ था। इनका बचपन का नाम खेतसी था बाद में सन् 1599 ई0 में जिनसिंह सूरि से दीक्षा लेने पर इनका राजसमुद्र हो बया। इनकी रचनाएँ हैं– 'षालिभद्र चौपाई', 'गजसुकमाल चौपाई', 'प्रष्नोत्तर रत्नमाला', 'कर्म बत्तीसी', 'षील बत्तीसी' और 'बालावबोध' आदि। इनकी भाषा राजस्थानी है और रचनाओं के मुख्य विषय नीति है।

**कुशलवीर**– ये सोजत नगर के निवासी थे। ये कल्याण लाभ के षिष्य थे। इनका जन्म–काल अज्ञात है, किंतु इनका रचनाकाल सन् 1637 ई0 से 1672 ई0 मध्य का है।



Scanned with CamScanner

इनकी रचनाएँ हैं–'भोज चौपाई', 'सीलवती', 'कर्म चौपाई', 'वर्णन सुपट' तथा 'उद्दिदम–कम–संवाद'। इनकी भाषा भी राजस्थानी है। इनकी षैली उपदेषात्मक है। नीति इनकी रचना का मुख्य विषय है।

**महापात्र नरहरि बंदीजन**– इनका जन्म संवत् 1562 में और मृत्यु संवत् 1667 में कही जाती है। 'महापात्र' की उपाधि इन्हें अकबर के दरबार से मिली थी। ये अरूनी फतेहपुर के रहने वाले थे और अकबर के दरबार में इनका बहुत मान था। इन्होंने छप्पय और कवित्त कहे हैं। इनके बनाये दो ग्रंथ परम्परा से प्रसिद्ध हैं– 'रुक्मिणीमंगल' और 'छप्पय नीति'। एक तीसरा ग्रंथ 'कवित्तसंग्रह' भी खोज में मिला है। इनका नीति संबंधी ग्रंथ 'छप्पयनीति' है जो पूरा नहीं मिलता। अब–तक इसके केवल 60 छप्पय मिले हैं। इनमें अधिकतर अकबर को संबोधित करके उसे नीति की षिक्षा देने के लिए लिखे गये हैं। नरहरि के नीति–काव्य के प्रधान विषय राजा, प्रजा, दान, मित्र, षत्रु, दुष्ट, प्रेम, लोभ तथा नारी आदि हैं। कहा जाता है कि इनके एक छप्पय के प्रभाव में आकर अकबर ने गोवध बंध कराया था–"**अरिहु दंत तिन धरै, ताहि नहिं मारि सकत कोइ।/हम संतत तिनु चरहिं, वचन उच्चरहिं दीन होई।।/अमृत पय नित स्रवहिं, बच्छ महि थंभन जावहिं।/हिन्दुहि मधुर न देहिं, कटुक तुरकहि न पियावहिं।।/कह कवि नरहरि, अकबर सुनौ बिनवति गउ जोरे करन।/अपराध कौन मोहिं मारियत, मुएह चाम सेवइ चरन।।**"

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भक्तिकाल के नीतिकार कवियों की नीतियों में दया, करुणा, क्षमा, प्रेम, वत्सल्यता व सामाजिक षांति और सौहार्द है, जिसके अनुकरण मात्र से जीवन धन्य हो जाएगा और उसकी कालजयिता स्वयं सिद्व हो जाएगी।



Scanned with CamScanner

# कबीर का दर्शन

( दर्शन : ब्रह्म, जीव, माया, जगत संबंधी विचारों का स्पष्टीकरण
- सभी दर्शनों ने ब्रह्म, जीव, माया, जगत को अपना विषय बनाया है।
- माया को कबीर ने सबसे अधिक दुत्कारा है। )

कबीरदास जी ब्रह्म से शुरु होकर जीव जगत तक जाते हैं, या जीव जगत से शुरु होकर ब्रह्म तक यह कहना बहुतकठिन है। लेकिन यह सही है कि उनके यहाँ ब्रह्म, जीव या जगत के बीच पारस्परिक दौड़ बहुत अधिक है। उनका ब्रह्म ही माया-युक्त होकर जीव हो जाता है और जीव ही जाता है जगत रचना का एक उपकरण। एक बिंदु पर पहुँचकर कबीर के ब्रह्म, जीव व जगत की भिन्नता खत्म हो जाती है, और तीनों एक ही मूल तत्व के रूप में दिखने लगते हैं। कबीर के दर्शन का मतलब है उनके माया, जीव और जगत संबंधी विचार को जानना समझना।

कबीर का ब्रह्म निर्गुण ब्रह्म है। उनके राम दशरथ के पुत्र राम नहीं हैं। वे तो गुणातीत हैं। जो लोग राम को दशरथ का पुत्र बताते हैं वे कबीर के क्रोध का शिकार बनते हैं:

दशरथ सुत तिहुँ लोक बखाना
राम नाम का मरम है आना

जिसने दशरथ सुत के रूप में उन्हें समझा वे भला राम का मर्म क्या जानेंगे? राम का मर्म जानने के लिए तो इस गुणात्मक संसार से परे जाना होगा। सांख्यदर्शन मानता है कि यह संसार सत्व, रज, तम जैसे गुणों से बना है और इसलिए रूपात्मक है, जबकि वह ब्रह्म तो अलख है, अगोचर है, अरूपात्मक है जो सत्, रज, तम से बना है, वह ऐंद्रिक अनुभूति का विषय हो जबकि वह ब्रह्म इंद्रियातीत है। कबीरदास जो उसे गुणों से न्यारा मानते हैं। वे कहते हैं-

(10)

रज गुण तम गुण सत गुण कहिबै
यह सब तेरी माया
चौथे पद को जो जन चीन्हें
तिन्ही परम पद पाया

तीन गुणों से बना हुआ संसार तो रूप संसार है इनके परे जो है वह अरूपात्मक ब्रह्म है। उसकी पहचान चौथे पद की पहचान से ही संभव है। कबीर कहते हैं कि यह विचित्र है कि रजगुण, तमगुण, सतगुण के प्रेमी तो बहुत मिलते हैं पर उस चौथे पद अरूप ब्रह्म के प्रेमी नहीं मिलते हैं।

तीन स्नेही बहु मिले चौथे मिले न कोई।

जिसे किसी उपाधि या विशेषण से विशेषित या विशेषित न किया जाय वह निर्गुण है। कबीर का निर्गुण ब्रह्म निषेधात्मक नहीं है। वेद ने ब्रह्म को 'नेति नेति' कहकर निषेधात्मक बताया है लेकिन कबीर उसे अनन्त गुण अमूर्त तो बताते हैं, लेकिन निषेधात्मक नहीं। कबीर का ब्रह्म न तो वेदान्तवादियों की तरह निषेधात्मक अद्वैत ब्रह्म है और न ही भक्तों का सगुण ब्रह्म और न ही वह इन दोनों के बीच का है। वह अद्वैत ब्रह्म है लेकिन प्रेम का अविषय नहीं है। वह दया, माया से रहित नहीं है। वह प्रेम का सुख देता भी है और हरता भी है। वास्तव में कीड़ी से लेकर कुंजर (हाथी) तक का सृजनहार है और उनके दुख-दर्द के प्रति संवेदनशील भी। इससे स्पष्ट है कि वह ब्रह्म वेदान्तवादियों का निषेधात्मक निर्गुण ब्रह्म नहीं है। कबीरदास जी का ब्रह्म तो निर्गुण होकर भी गुण में समाया है। गुण होकर भी निर्गुण में विलसित है। निर्गुण व गुण का यह तादात्म्य उसे अद्भुत व विलक्षण बनाता है। कबीर कहते हैं -

गुण में निर्गुण निर्गुण में गुण
आन बात क्यों कहिए

यह सही है कि कबीर के ब्रह्म का कोई स्वरूप नहीं है। वह वर्ण, रूप रेखा रहित है, लेकिन इससे भी बढ़कर है यह कहना कि वह घट-घट में समाया हुआ है। कोई भी कला ब्रह्म की पहुँच के बाहर नहीं है।

नाती स्वरूप वरण नहीं जाके
घटि घटि रह्या समाई

वह निर्गुण ब्रह्म ही सगुण ब्रह्म है। वह पक्षों में बँटा

इनका जन्म सन 1586 ई० में ... व्यवसाय से जौहरी थे, इनके पिता क ... करत ... तका ... मा

नहीं जाना जा ... जाति ... गुण ... जैसे पक्षी में उसका विभाजन पक्षान्तर को ही प्रत्यक्ष करता है, जबकि ब्रह्म है पक्षान्तर का आभास। उस पूर्ण ब्रह्म को एकांगी नजरिए से नहीं पूर्ण की पूर्ण दृष्टि से ही समझा जा सकता है।

कबीर का ब्रह्म कर्ता है, कर्मा नहीं। जो कर्म के हाथ बिका हुआ है वह कर्ता नहीं हो सकता। कबीर अवतारों को ब्रह्म मानने को तैयार नहीं क्योंकि ये अवतार जन्म मरण के बन्धन में बंधे हैं, समाज से अन्याय को मिटाने का लक्ष्य लेकर आए हैं। कबीर कहते हैं कि राम और कृष्ण को ब्रह्म कैसे माना जा सकता है जो धर्म व जाति के बंधन में बंधे हैं, जिसे पंडितों ने मंदिर की चारदीवारी में कैद कर रखा है। यदि वे ही कर्ता है तो उनको जिसने जन्म दिया है उसका कर्ता कौन है? अतः कबीर की स्पष्ट राय है कि अवतार संत हो सकते हैं ब्रह्म नहीं। क्योंकि यदि ब्रह्म जन्म और मरण से अतीत है, गुणों से न्यारा है तो वह कर्म से भी अतीत है, न्यारा है।

कहे कबीर कर्ता नहीं सोई जो कर्मा हाथ बिकाय

कबीर के राम तो विलक्षण, अद्भुत राम हैं। कबीर कहते हैं

अद्भुत कहिए ताए

इस राम को रा का टोप और म का कवच पहनकर विषय वासनाओं को मारते हुए ही पाया जा सकता है। नाम ही ब्रह्म है और नाम जप ही ब्रह्म की प्राप्ति का सर्वोत्तम उपाय है। कबीर ने प्रणव या ओंकार सेवा को यदि महत्व दिया तो इसलिए कि वे ब्रह्म को मंदिर या मस्जिद की कैद से मुक्त करना चाहते थे। कबीर का यह ब्रह्म विलक्षण है वह सृष्टि की भी अद्भुत रचना करता है। उसी के कारण चंदन जैसे अद्भुत वृक्ष में फूल भी फूल नहीं लगते और लवंग जैसे वृक्ष में फल नहीं लगता। याज्ञवल्क्य ने कहा है कि आज तक किसी ने भी ईश्वर को नहीं देखा, वह सिर्फ भाव से ही जाना जा सकता। गीता में कृष्ण कहते हैं जो योग से मन को वश में कर उसे भक्तियुक्त बनाकर दोनों भौंहों के बीच में प्राण को धारण कर ईश्वर को स्मरण करता है, वह ईश्वर में ही जाकर



Scanned with CamScanner

तीर्थ जाता है। कबीर [illegible] वन भटकते हैं पर इन्हें नहीं मिलते मिल जाते हैं राम ईश्वर जैसे जन। कबीर की सारी इच्छाएँ व जिज्ञासाएँ जब इस राम खरीखा जन से ही पूरी हो गई तो फिर राम की क्या जरूरत? कबीर का जो ब्रह्म दार्शनिक स्तर पर अद्वैत, निर्गुण है, वही व्यवहारिक स्तर पर राम खरीखा जन है। कबीर संतों को, भक्तों का राम खरीखा जन से बताते हैं। ऐसा करके वे अरूप पर रूप का आरोप नहीं कर रहे, रूप में अरूप का ध्यान करते हैं।

कबीर बन बन में फिरा कारण आपने राम
राम खरीखा जन मिल्या तिन्ह सारे सब काम

कबीर का राम खरीखा जन इसी समाज में रहता है वह एक रूपात्मक सत्ता है, जिसमें अरूपात्मक सत्ता के गुण मौजूद हैं वह राम की तरह ही जिज्ञासुओं के सब प्रश्न का शमन कर सकता है यहाँ आकर कबीर का दर्शन सामान्य बुद्धि के चिंतन का विषय बनने लगता है। कबीर कहते हैं कि उनका ब्रह्म इस सृष्टि के पोरो पोरों में, रग रग में समाया है कोई भी देह उससे खाली नहीं है:

हर घट मेरा साइयाँ सूनी सेज न कोई

कबीरदास जी का ब्रह्म शून्य ब्रह्म है अमूर्त है। कबीर उसकी अमूर्तता को पकड़ पाने के लिए उसे विभिन्न नामों, विभिन्न संबंधों में व्यक्त करते हैं। एक नाम व एक संबंध निश्चितता का बोधक होता है जबकि अनेक नाम, अनेक संबंध अनिश्चितता व अमूर्तता का। दूसरी बात यह कि विरुद्धों का सामंजस्य यदि सामान्य बुद्धि में दुष्कर है तो ब्रह्म में यह सहज समाप्य है। कबीर का यह ब्रह्म इसलिए भी अमूर्त है कि अब तक जितने लोग हो चुके हैं, उनमें तद था, अब भी जितने लोग उपलब्ध हैं उनमें वह है और भविष्य में जितने लोग आयेंगे उनमें भी वह रहेगा। हर व्यक्ति एक दूसरे से विलक्षण है अतः वह ब्रह्म रूप में होता हुआ भी आकार व रूप की भिन्नता के कारण अमूर्त व विलक्षण है। जिस तरह जल का कोई निश्चित आकार नहीं होता उसी तरह ब्रह्म का भी कोई निश्चित आकार नहीं होता। इसी निराकारता के कारण वे अमूर्त हैं।

कहै कबीर हरि ऐसा
जहाँ जैसा तहा तैसा

कबीर का ब्रह्म सब में होने की वजह से और सब में अलग-अलग तरह से होने की वजह से अमूर्त है इसे पूर्णतः पाने के लिए शेष से जुड़ना होगा और यह शेष से जुड़ना ही कबीर को समाजिकता, विश्वमानवता वाद से जोड़ देता है। क्योंकि जो अपने में है सिर्फ वही ब्रह्म नहीं है, वह इसमें भी है। इस अलग-२ ब्रह्म को पाना जीव, जड़, सत्ता से जुड़ना है।

13

Scanned with CamScanner